IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

कबीर की काव्य दृष्टि

डॉ० यज्ञेश कुमार
सहायक आचार्य

हिंदी विभाग, चौ० चरण सिंह वि०वि० मेरठ

शोध सारांश

निर्गुण भक्ति का उपदेश देने वाले कबीर महान् साधक विचारक, उपदेशक, समाज सुधारक और सच्चे नेता थे। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरित होकर जनता को अनेक प्रकार से समझाया। कहीं–कहीं डाँट–फटकार भी सुनाई तो कही प्रेम का सन्देश दिया। कही समाज में फैली। किया तो कही मन्दिर–मस्जिद की एकता, प्रभु नाम स्मरण की आवश्यकता और कथनी–करनी की एक रूपता पर बल दिया। उन्होंने यत्र–तत्र दार्शनिक विचारों, रहस्यवादी भावों और भक्ति के तत्वों का उल्लेख किया है। इस प्रकार समाज सुधारक और कवि दोनों ही रूप में वे विख्यात रहे। इन्हीं समग्र विशेषताओं के कारण हिंदी साहित्य में उन्हें उच्च स्थान प्राप्त है।

कबीर मूलरूप से समाज सुधारक हैं। उनके काव्य में समाज–चेतना विद्यमान है। उन्होंने जाति–पाँति, मूर्ति–पूजा, **बाह्याडम्बरों**, रूढ़ियो का विरोध किया, छूआछूत को अपराध माना। धर्म निरपेक्षता पर बल दिया विभिन्न कुरीतियों, अन्धविश्वासों और आड़म्बरों का विरोध किया और लोक कल्याण की भावना का प्रसार किया। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से उत्तम न होने पर भी उनका काव्य समाज को दिए गए संदेशों के कारण अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–''हिंदी–साहित्य के हजार वर्षो के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ।''

साहित्य भारतीय समाज में एक परम्परा के रूप में हमें प्राप्त होता है। संत साहित्य के माध्यम से हम उस समय को सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौतिक, नैतिक स्वरूप का भान कर पाते हैं। साथ ही इतिहास का भी पता चलता है। संत साहित्य में एक नाम प्रमुखता से सामने आता है। वो है कबीर का नाम। कबीर के काव्य के माध्यम से हमें भक्ति, ज्ञान, समाज के विषय में पता चलता है। कबीर केवल संत ही नहीं थे वे समाज सुधारक भी थे उनका साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का विचार है कि 'कबीर दास बहुत कुछ को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर अवतीर्ण हुए थे' उन्होंने 'आजीवन सम्प्रदायवाद, **बाह्मचार**, और बाहरी भेदभाव पर कठोरतम आघात किया था।'

महात्मा कबीरदास बहुश्रुत थे। उन्होंने सत्संग के माध्यम से वेदान्त–उपनिषदों और पौराणिक कथाओं का यथेष्ट ज्ञान अर्जित किया था। योग की क्रियाओं के विषय में उनको जानकारी थी। उन्होंने इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, षटचक्र आदि का उल्लेख किया है, लेकिन फिर भी उन्होंने योग को अधिक प्रधानता नहीं दी। उन्होंने केवल हिन्दू और मुसलमान धर्मो का उल्लेख करते हुए दोनों को फटकारा तथा **सद्मार्ग** दिखाने का प्रयास किया है। पाश्चात्य जगत में यूरोप में लूथर से पहले 15वीं शताब्दी के लगभग पोप को ही धर्म का प्रमुख अधिकारी माना जाता था उसी तरह कबीर के समय में भी भारत में धर्म के अधिकारी के रूप में केवल ब्राह्मण समाज को ही देखा जाता था। इस समय के राजा भी निरंकुश थे उनकी इसी नीति के कारण भारत में राजनैतिक असंतोष भी अत्यधिक रूप व्याप्त था। इसी समय कबीर ने समाज का सच्चा मार्ग दर्शन किया। हालांकि कबीर ने जो उपदेश दिए वो मुख्यतः धार्मिक सुधार के विषय में ही थे, फिर भी उस समय के समाज सुधारकों में कबीर का स्थान सर्वोपरि आता है।

कबीर एक सुधारक थे। वो धार्मिक पाखडों का विरोध करके सत्य पर बल देते थे। उनका मानना था कि हिन्दू और मुसलमानों का आपस में विरोध उनके अन्धविश्वास के कारण है–

अरे इन दोउन राह न पाई।

हिन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई।।

उनका मानना था धर्म का मार्ग संसार के कृत्रिम भेदभावों से रहित है–

''कह हिन्दू मोहि राम पियारा, तुरक कहैं रहिमाना।

आपस में दोउ लरि मुये, मरम न काहु जाना।।''

वास्तविकता यह है कि उस समय के भारतीय समाज में कबीर ने भाईचारा की भावना का सूत्रपात किया था। गुरू रामानन्द ने भक्तिभाव के आन्दोलन के माध्यम से ईश्वर के समक्ष समभाव का विचार प्रतिपादित किया था परन्तु सत्य यह है कि कबीर से पहले किसी अन्य ने जाति–पाति और ऊँच–नीच पर कुछ कहने को साहस नहीं किया था। समाज सुधारक प्रायः नवीन मार्ग नहीं दिखाता अपितु वह अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता के भ्रम में पड़े मानव समाज का विवेक जगाने का प्रत्यन करता है। कबीर की विचारधारा स्वतन्त्र थी। कबीर के अतिरिक्त किसी अन्य ने काशी के हिन्दु बहुल क्षेत्र में यह पूछने का साहस ही नहीं किया ''जो तुम ब्राह्मननि ज्याये, और राह तुम काहे न आये।'' उनका मत था कि जैसे काले और सफेद रंग की दो अलग गाथ हैं परन्तु इन दोनों का दूध एक जैसा ही है इसी प्रकार परमात्मा द्वारा रचित सृष्टि में जीवों में कैसा भेद है, इस सम्बन्ध में उनका मत है–

''एक ही रक्त से बने हैं, को ब्राह्मण को सूद्रा।''

''कोई हिन्दू कोई तुरक कहाबै, एक जमीं पर रहिए।''

कबीरदास की समदृष्टि ने उनको सार्वभौमिक बनाया। जाति व्यवस्था के कारण उस समय छूआछूत का व्यापक प्रभाव समाज में व्याप्त था। हिन्दू और मुसलमान दोनों समाज में अपने–अपने नियम और संस्कार थे। धर्म के वास्तविक स्वरूप की एवं दर्शन की अवहेलना हो रही थी। धर्म के नाम पर केवल बाह्य आडम्बर ही रह गया था। हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मो में धर्माधिकारी की प्रधानता और संकुचित विचारों के कारण बाहरी आडम्बर बहुत बढ़ गये थे। कबीर इन परिस्थितियों को देखकर 'झूठे की बना' समझकर कहा–

सुर नरमुनि निरंजन देवा, सब मिल कीन्ह एक बन्धना।

आप बंधे औरन को बांधे, भवसागर का कीन्ह पयाना।।

यह बात सत्य थी साथ ही रूखी भी। कबीर ने कुरान, वेद आदि धार्मिक ग्रंथों को हेय तो कहा लेकिन उनको बिल्कुल ही त्यागने के विषय में कुछ नहीं कहा। वो कहते हैं कि वह व्यक्ति झूठा है जो इनके विषय में सोच विचार नहीं करता।

वेद किताब कहो मत झूठे, झूठा जो न करे विचारै।

कबीर दास बाह्य आडम्बरों यथा तीर्थ–व्रत, स्नान (नदी इत्यादि में पर्व विशेष के सम्बन्ध में) आदि को बेकार मानते थे। कबीर ने वैदिक धर्म के अनुसार और सूफी मत अनुसार ईश्वरीय सत्ता को सर्वत्र व्याप्त स्वीकार किया है। कुछ मतों में ईश्वर को पूर्व में कुछ में पश्चिम में माना जाता है। कोई पूजा पाठ करके घंटा बजाता है कोई नमाज पढ़ता है। उनका मानना था कि महादेव और मुहम्मद में कोई अन्तर नहीं है, राम–रहीम एक है हिंदू और मुसलमान सभी उसी एक परम पिता की संतान हैं–

"हिन्दू तुरक की एक राह है, सद्गुरू यहै बताइ।

कहै कबीर सुनो हो सन्तों, राम न कहेउ खोदाई।।"

कबीर अपने समय की धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार करते हुए आपसी विरोध को हटाने का प्रयत्न करते हैं। उन्होंने अपने उपदेशों में सरल जीवन, सत्य, स्पष्ट व्यवहार पर जोर दिया है। कबीर का मानना था–'इन दोउन राह न पाई' वो कहते हैं एक बकरी काट रहा है तो दूसरा गाय को। यह पाखण्ड नहीं है तो क्या है? कबीर दोनों के आडम्बरों का विरोध करते थे। कबीर ने कभी भी किसी धार्मिक ज्ञान का सहारा नहीं लिया। उनका मत था–

"मैं कहता आँखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी"

कबीर के अनुसार गुरू ईश्वर से भी श्रेष्ठ है क्योंकि गुरू ही ईश्वर से साक्षात्कार कराता है। गुरू की कृपा से ही जन्म और मरण से मुक्ति मिलती है। गुरू की महिमा अनंत है। इसलिए कबीर उन पर बार–बार बलिहारी जाते है–

"गुरू गोविन्द दोऊ खड़े काके लागे पाय।

X X X X X X X X X X X X X X X X X

बलिहारी गुरू आपने गोविन्द दियो बताए।।"

पूजा, सेवा, नेम, व्रत गुडियन का सा खेला।

जब लग पिउ परसे नहीं, तब लग संसय मेला।।

X X X X X X X X X X X X X X X X X

कबीर हिंदू मुस्लिम एकता पर बल देते थे उनका मानना था कि हिंदू मुसलमान आपस में लड़ना झगड़ना छोड़कर एक होकर रहें। कबीर ने हिंदू और मुसलमानों के अपने–अपने सम्प्रदायों में लड़ने पर भी को गलत माना। हिंदू धर्म विभिन्न मतों और सम्प्रदायों में बंटा था सब एक दूसरे को हेय दृष्टि से देखते थे और स्वयं को बड़ा एवं ऊँचा बताते थे इसी प्रकार मुसलमानों में काबा, मस्जिद, पीर पैगम्बर के नाम विरोध था। कबीर का मानना था कि ईश्वर प्राप्ति का सर्वप्रथम उपाय मन का शुद्ध होना है। हिन्दुओं पर कटाक्ष करते हुए वो कहते हैं–

पाहन पूजे हरि मिलैं तो मैं पूजूँ पहार।

ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार।।

मुसलमानों पर कटाक्ष करते हुए कबीर कह रहे हैं–

काँकर पाथर जोरि के मस्जिद लुई चुनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।

वास्तव में कबीर हिंदू मुसलमानों के भेदभाव को मिटाना चाहते थे। वे दोनों की एकता के पक्षधर थे। कबीर साधु–सन्यासियों द्वारा बाल मुड़ाने, बाल बढ़ाने, गेरूआ वस्त्र पहनने, नग्न रहने आदि क्रियाओं के विरूद्ध थे बार–बार बाल मुड़ाने वालों को कबीर कहते हैं–

केसन कहा बिगाड़िया जो मूड़ै सौ बार।

मन को कहा न मूँडिए जा में विषै विकार।।

वैष्णव सम्प्रदाय के व्यक्तियों द्वारा छापा तिलक लगाए जाने का विरोध करते हुए कहते हैं–

जप माला, छापा तिलक सरै न एकउ काम।

मन काचै–नाचै वृथा, साचैं–राचैं राम।।

माला फेरने वाले मन में ध्यान नहीं लगाते ऐसे व्यक्तियों पर कबीर व्यंग्य करते हैं–

माला फेरत जुग भया, गया न मन का फेर।

कर का मन का डारि दे, मन का मनका फेर।।

कबीर हिंदू मुसलमान दोनों की तीर्थ यात्रा का विरोध कहते हैं वो कहते है कि मन और विचार यदि शुद्ध हैं तो सब सही है अन्यथा सब बेकार है। वो मुसलमानों पर व्यंग्य करते हैं—

दिन में रोजा रखत हैं, राति हनत हैं गाय।

यह तो खून, वह बदंगी, कैसी खुसी खुदाय।।

कबीर का कहना था कि जो कहो उसे पूर्ण करो और जितना करो उतना ही वर्णन करो अधिक का वर्णन नहीं करो। कथनी और करनी में अन्तर रखने वालों के वे घोर विरोध थे—

कथनी मीठी खांड—सी, करनी बिस की लोय।

कथनी तत्रि करनी करे विष तै अमृत होय।।

कबीर ने हिंसा का घोर विरोध किया है वे अहिंसा को ही परम धर्म मानते थे।—

बकरी पाती खात है, ताकी काटी खाल।

जे नर बकरी खात हैं, ताको कौन हवाल।।

कबीर का मानना था कि इस संसार में संत और असंत को पहचानना कठिन कार्य है उनके मत में संत वही है जिसकी कोई जाति नहीं है 'जात न पूछो साधो की' परन्तु हृदय में ज्ञान का प्रकाश है। उनके मत में संत अपनी सज्जनता का त्याग कभी नहीं करता भले ही कितनी कष्ट आए—

संत न छोड़े संतई, कोटिक मिले असंत।

मलय भुजंगहि बेधिया सीतलता न तंजत।।

उनका मानना है कि वास्तव में संत वही है जो दूसरों की विपत्ति में सहायता करता है—

कबिरा संगत साधु की, हरै और की व्याधि।

संगत बुरी असाधु की, आठों पहर उपाधि।।

कबीर ने अपने काव्य में प्रेम को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनके अनुसार 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय' अर्थात प्रेम हो जाने पर व्यक्ति को ईश्वर से साक्षात्कार करने में कठिनाई नहीं होती। कबीर का मानना है

कि प्रेम की पूर्णता उसमें पूरी तरह डूब जाने में है। प्रेम की स्थिति में द्वैत की भावना समाप्त हो जाती है किन्तु जो व्यक्ति आत्मबलिदान के लिए तैयार हो, वही प्रेम के मन्दिर में प्रवेश प्राप्त कर सकता है।

कबीर ने अपने अनुभव को अपने काव्य में स्थान दिया है वो जीवन की क्षणभंगुरता पर कहते है–

झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।

खलक चबीणाँ काल का, कुछ मुख में कुछ गोद।।

प्रेमानुभूति के अनेक प्रसंग कबीर ने देखे और परखे। प्रभु प्रेम में वो दिन–रात डूबे रहे हैं उन्हें केवल प्रभु नाम की ही चिन्ता है प्रभु का स्मरण करते हुए वो स्वयं प्रभुमय हो जाते है।

'हेरत–हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ'।

प्रभुमय हो जाने पर उनकी सम्पूर्ण प्यास (इच्छाए) शांत हो जाती है–

कबीर हरिरस यौ पिया, बाकी रही न थाकि।

पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़ई चाकि।।

अपनी अनुभूति के माध्यम से कबीर जन–सामान्य को उपदेश देते हुए समझाते हैं कि जन–सामान्य को मोह माया में लिप्त नहीं होना चाहिए अपितु सदैव प्रभु का स्मरण करते रहना चाहिए–

कैसौ कहि कहि कूकिए, ना सोइयै असरार।

राति दिवस के कूकणै कबहूँ लगै पुकार।।

कबीर ने जीवन्त व्यक्ति जन–सामान्य को शिक्षा दी। वे सुकरात के समान कड़वी बात करते थे। उनका विद्रोही स्वर तत्कालीन शासन व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था पर तीव्रतम आघात करता था। कबीर का दृष्टिकोण 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' का न होकर आचरण करने का था। वे समाज को सुधारने से पहले व्यक्ति को सुधारना चाहते थे, क्योंकि व्यक्ति की इकाइयाँ ही समाज का निर्माण करती है। इस कारण कबीर ने समाज की अपेक्षा व्यक्ति के सुधार पर अधिक बल दिया। अन्त में हम आचार्य डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कह सकते हैं–''कबीर दास ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ से एक और हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी और मुसलमानत्व; जहाँ एक और ज्ञान निकल जाता है और दूसरी और अशिक्षा, जहाँ एक और योग मार्ग निकल जाता है; दूसरी और भक्ति मार्ग, जहाँ से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना

उसी प्रशस्त रास्ते पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरूद्ध दिशा से गए हुए मार्गो के दोष–गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। यह कबीरदास का भगवद्दत सौभाग्य था। उन्होंने उसका खूब उपयोग भी किया।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी साहित्य का इतिहास–डॉ० माधव सोन टक्के
2. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ–डॉ० जयकिशन प्रसाद
3. कबीर एक नई दृष्टि–रघुवंश
4. कबीर ग्रंथावली मं प्रेमभक्ति–डॉ० कुसुम श्रीवास्तव
5. कबीर एक विश्लेषण–सं० शिवदान सिंह चौहान
6. कबीर की भाषा
7. कबीर–डॉ० रामरतन भटनागर
8. कबीर–हजारी प्रसाद द्विवेदी
9. कबीर गंथावली–डॉ० श्याम सुन्दर दास